बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 11 अंक 282

हड़बड़ाहट भरा कदम

गत सप्ताह केंद्रीय जांच ब्यूरो (सीबीआई) के प्रमुख के पद पर आलोक वर्मा की बहाली और वहां से 48 घंटे के भीतर उनकी विदाई ने सरकार की उस छवि को और प्रबल किया है कि वह संस्थानों की स्वायत्तता का बहुत अधिक सम्मान नहीं करती। वर्मा के खिलाफ चल रही केंद्रीय सतर्कता आयोग (सीवीसी) की जांच की निगरानी कर रहे सर्वोच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश ए के पटनायक की टिप्पणियों के हिसाब से देखा जाए तो सीबीआई प्रमुख को उनका कार्यकाल पूरा करने देना चाहिए था। तीन सदस्यीय चयन समिति ने 2:1 के निर्णय से वर्मा को उनके पद से हटा दिया था। समिति ने कहा कि सीवीसी द्वारा वर्मा के खिलाफ किए गए पर्यवेक्षण की गंभीरता को देखते हुए उन्हें पद से हटाया जा रहा है।

तीन सदस्यीय समिति में लोकसभा में नेता प्रतिपक्ष मल्लिकार्जुन खड़गे इकलौते ऐसे सदस्य थे जिसने उन्हें पद से हटाने की सहमति नहीं दी थी। खड़गे ने कहा कि सीवीसी की जांच में वर्मा के खिलाफ लगाए गए आरोपों को लेकर कोई स्पष्ट निष्कर्ष नहीं दिया गया है। उनके खिलाफ प्रस्तुत शिकायतों में स्पष्ट तौर पर ईमानदारी के अभाव के बजाय कुछ प्रमुख मामलों में शिथिलता बरतने की शिकायतें अधिक हैं। खड़गे की बातों को आम चुनाव के पहले विपक्षी दल की सामान्य असहमति मानकर खारिज कर दिया जाता लेकिन न्यायमूर्ति पटनायक की टिप्पणी उनकी दलीलों को मजबूत करती है। पटनायक ने कहा कि सीवीसी की रिपोर्ट सुनिश्चित तौर पर किसी नतीजे पर नहीं जाती। उनका इशारा यह भी है कि जांच को पूरा करने के दौरान भी अन्य तरह की अनियमितताएं बरती गईं। उन्होंने वर्मा को पद से हटाने के समिति के निर्णय को बहुत उतावली में उठाया गया कदम बताया।

सर्वोच्च न्यायालय के अनुरोध पर सीवीसी की जांच की निगरानी कर रहे न्यायमूर्ति पटनायक ने समाचार पत्र द इंडियन एक्सप्रेस से कहा कि वर्मा के खिलाफ भ्रष्टाचार का कोई मामला नहीं था। न्यायमूर्ति पटनायक ने कुछ अतिरिक्त बातें कहीं जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। पहली बात, उन्होंने कहा कि यह जांच केवल और केवल वर्मा के अधीनस्थ राकेश अस्थाना के दावों पर आधारित थी और 9 नवंबर को अस्थाना ने आरोप लगाते हुए जिन दस्तावेजों पर हस्ताक्षर किए वे उनकी उपस्थिति में हस्ताक्षरित नहीं थे। दूसरी बात, सीवीसी रिपोर्ट के निष्कर्ष उनके दिए हुए नहीं थे। तीसरी बात, उन्होंने कहा कि सीवीसी का कहना अंतिम नहीं है। यह बात जरूर अजीब है कि समिति ने इस बात पर विचार करना प्रासंगिक नहीं समझा कि वर्मा के खिलाफ आरोप उसी व्यक्ति ने लगाए थे जिसके खिलाफ खुद सीबीआई ने भ्रष्टाचार के मामले में प्राथमिकी दर्ज कराई थी और जिसके खिलाफ फिलहाल छह मामलों में जांच चल रही है। भारतीय पुलिस सेवा से अपने त्यागपत्र में वर्मा ने ये मुद्दे उठाए और कहा कि चयन समिति ने उन्हें अपनी वे बातें स्पष्ट करने का अवसर नहीं दिया जो निर्णय पर पहुंचने के पहले सीवीसी ने दर्ज की हैं।

देश की सर्वोच्च जांच एजेंसी में घटी इस विशिष्ट घटना को लेकर इन प्रमाणों के बाद सरकार के इरादे पर सवाल उठना तय है। यह अजीब है कि वर्मा के खिलाफ भ्रष्टाचार के आरोपों को गंभीर मान रही सरकार को वर्मा एक अन्य महत्त्वपूर्ण पद के लिए उपयुक्त लगे। उन्हें अग्निशमन सेवा का महानिदेशक बनाया गया, हालांकि उन्होंने इस पद को नकार दिया। यह बात भी अजीब है कि तीन सदस्यीय चयन समिति के सदस्यों में से एक न्यायमूर्ति सीकरी जिन्होंने वर्मा के निष्कासन में निर्णायक मत दिया, उन्होंने भी विधि और प्रक्रिया से जुड़े ये प्रश्न नहीं उठाए।

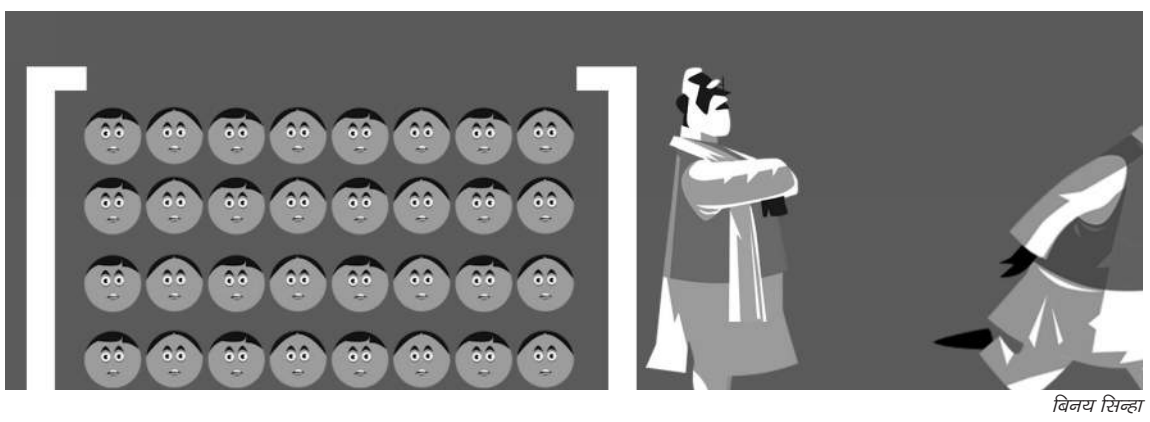

विनय सिन्हा

राहुल का मोदी विरोध और पार्टी का जनाधार

राहुल गांधी का मोदी विरोधी अभियान भाजपा को नुकसान पहुंचा सकता है लेकिन वह कांग्रेस को वोट नहीं दिला पाएगा।

राष्ट्र की बात

शेखर गुप्ता

वह गुजरे जमाने की बात हो गई जब लोकतांत्रिक देशों के नेता सभी नागरिकों से बातचीत किया करते थे। निर्वाचित होने के बाद वे सब के हितों का ध्यान रखते थे, इनमें वे लोग भी बड़ी तादाद में शामिल होते थे जो उनको वोट नहीं देते थे। ऐसा इसलिए क्योंकि वे सार्वजनिक पद पर होते और यह मामला सार्वजनिक विश्वास का था। अब वे केवल अपने 'आधार' को ही संबोधित करते हैं। बाकियों से उनको कोई मतलब नहीं होता।

अमेरिका के राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप को लाखों लोग मूर्ख, नस्लवादी और जाने क्या-क्या कहते हैं। इसके बावजूद वह अपने समर्थकों के बीच लोकप्रिय होते जाते हैं। संदेश एकदम स्पष्ट है कि अगर आप मुझे वोट नहीं देते हैं तो मुझसे कोई अपेक्षा भी मत रखिए।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) का उदाहरण लीजिए। वह हिंदू मतों की बदौलत सत्ता में आई। उसने उत्तर प्रदेश में लोकसभा और विधानसभा के चुनावों में एक भी मुस्लिम प्रत्याशी नहीं उतारा जबकि वहां 20 फीसदी से अधिक आबादी मुस्लिम है। इसके बावजूद पार्टी को राज्य के दोनों चुनावों में एकतरफा जीत मिली। वे मुस्लिमों और अधिकांश दलितों को सत्ता से बाहर रख सकते हैं क्योंकि सवर्ण उनके साथ हैं। यही कारण है कि चुनाव में जाने के पहले मोदी सरकार ने उनके लिए 10 प्रतिशत आरक्षण जैसा बड़ा कदम उठाया है।

प्रश्न यह है कि राहुल गांधी आखिर किन मतदाताओं को संबोधित कर रहे हैं? उनका आधार क्या है? क्या उनको पता भी है? भारत में केवल मोदी विरोध के बल पर चुनाव नहीं जीता जा सकता।

हमें पता है कि 2014 में केवल 31 फीसदी भारतीयों के वोट से मोदी सत्ता में आए थे। आप कह सकते हैं कि बड़ी आबादी उनसे असहमत या उन्हें नापसंद करने वालों की भी है। राहुल गांधी के मोदी पर अनवरत हमले ऐसे लोगों को रास आते हैं। परंतु इसका यह मतलब नहीं कि वे उन्हें वोट भी देंगे। अगर मोदी के विरुद्ध नाराजगी ही आपकी प्रेरक शक्ति है तो काफी संभावना है कि आप उपलब्ध विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ का चयन कर लें। बंगाल में यह ममता बनर्जी हो सकती हैं, उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी या बहुजन समाज पार्टी, बिहार में लालू प्रसाद, केरल में वाम, तेलंगाना, ओडिशा और दिल्ली में क्रमश: केसीआर, नवीन पटनायक और अरविंद केजरीवाल हो सकते हैं।

अगर राहुल के इस अभियान की बदौलत मोदी की छवि को इतना नुकसान हो कि लोग उन्हें पराजित कर दें तो भी क्या वे बदले में कांग्रेस को चुनेंगे? फिलहाल यह संभव नहीं दिखता क्योंकि मोदी को बुरा मानने का यह अर्थ नहीं है कि लोग कांग्रेस को श्रेष्ठ मान बैठेंगे। सन 1989 तक कांग्रेस का आधार इतना तो था कि वह चुनावी जीत हासिल कर सके। निचली जातियां, अल्पसंख्यक, जनजातियां, ब्राह्मण, मध्य वर्ग का कुछ हिस्सा और बड़ी तादाद में गरीब उसके साथ थे। उस वक्त भाजपा शहरी कारोबारियों और हिंदू मध्य वर्ग तक सीमित थी। यही कारण है कि इंदिरा गांधी जनसंघ/भाजपा को बनिया पार्टी कहती थीं, न कि हिंदू पार्टी।

इसके साथ ही जब तक इंदिरा गांधी रहीं भाजपा कभी कांग्रेस को मुस्लिम पार्टी नहीं कह सकीं। कांग्रेस की मुस्लिम परस्त छवि की शुरुआत संप्रग के कार्यकाल के दशक में बनी। इसकी शुरुआत पोटा (प्रीवेंशन ऑफ टेररिज्म ऐक्ट) को खत्म करने से हुई। सन 1989 में जब राजीव गांधी अपना आधार गंवाने लगे तब कांग्रेस ने अपने बचे खुचे वोट और भाजपा विरोधी राजनीतिक ताकतों को एकजुट कर खुद को बचाए रखा। 2014 के बाद पार्टी को सत्ता में वापसी करने के लिए कहीं अधिक प्रयास करने होंगे।

लोकसभा चुनाव में करीब तीन महीने का समय बचा है और कांग्रेस के पास पंजाब को छोड़कर किसी राज्य में ऐसे वफादार मतदाता नहीं हैं जिन पर वह भरोसा कर सके। पूर्वी और मध्य क्षेत्र के जनजातीय इलाकों के वोट उसके और भाजपा के बीच बंटे हुए हैं। उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, बिहार और असम जैसे प्रमुख राज्यों में मुस्लिम मतदाताओं के पास अन्य विकल्प हैं। शहरी मध्यवर्ग, खासकर 25 की आसपास की उम्र के युवा अभी भी मोदी समर्थक हैं। ऐसे में केवल मोदी विरोधियों को साथ लेकर मनमाफिक मतदाता वर्ग तैयार नहीं किया जा सकता है। मोदी को नुकसान पहुंचाया जा सकता है लेकिन इसके लाभार्थी कई धड़ों में बंटे रहेंगे।

राहुल की रणनीति काफी हद तक 2010-2014 के दौर के अरविंद केजरीवाल की तरह है। केजरीवाल ने अन्ना हजारे और आरएसएस की ताकत का इस्तेमाल करते हुए संप्रग और कांग्रेस की विश्वसनीयता को समाप्त कर दिया था। यह इतने सलीके से किया गया था कि कांग्रेस के लोगों तक को भ्रष्टाचार के आरोपों से बचाव करना मुश्किल हो रहा था।

भाजपा और विवेकानंद फाउंडेशन को श्रेय देना आसान है लेकिन कांग्रेस के खिलाफ उस लड़ाई में असली हथियार केजरीवाल थे। वह युवा और भरोसेमंद थे, उन पर भ्रष्टाचार का कोई इल्जाम नहीं था और वह पारंपरिक राजनीति से भी नहीं आते थे। उन्होंने कांग्रेस के खिलाफ सब चोर हैं का जुमला दिया। हुआ यह कि कांग्रेस विरोधी सभी वोट उनके पास नहीं आए। उनकी तैयारी इतनी नहीं थी। यही कारण है कि वह दिल्ली तक सिमट गए। अन्य स्थानों पर कांग्रेस विरोधी मत नरेंद्र मोदी को चले गए।

बिना विकल्प की नकारात्मक राजनीति का यही परिणाम होना था। वैकल्पिक राजनीति के लिए एक तयशुदा आधार की आवश्यकता होती है। राहुल के साथ भी ऐसा ही हो सकता है। एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में ऐसा अधूरा विरोध आपके बजाय दूसरे को सत्ता दिलाने की वजह बन सकता है।

तीन हिंदी भाषी राज्यों में राहुल गांधी की सफलता, सुर्खियां बटोरने में उनकी काबिलियत और ट्विटर पर उन्हें मिल रहे समर्थन ने उनके बौद्धिक समर्थकों और मोदी विरोधी वाम-उदारवादियों की कल्पनाशीलता को पंख लगा दिए हैं। परंतु यह बहुत बड़ा मतदाता वर्ग नहीं है। लाखों की तादाद में आ रहे रीट्वीट और लाइक्स ईवीएम में नहीं गिने जाते। राहुल गुरिल्ला शैली में हमले तो कर रहे हैं लेकिन इसका हासिल नजर नहीं आ रहा।

मुस्लिम पार्टी की छवि तोड़ने के लिए राहुल मंदिरों की यात्राएं कर रहे हैं, अपना जनेऊ दिखा रहे हैं और अपना उच्च ब्राह्मण गोत्र उचार रहे हैं। इसी दौरान उनकी पार्टी तीन तलाक, शबरीमला, अगड़ों के आरक्षण जैसे अहम धर्मनिरपेक्ष-उदारवादी मुद्दों पर खामोश रही। भरोसे की यही कमी तब नजर आई जब उनकी पार्टी नागरिकता अधिनियम में संशोधन के मुद्दे पर लोकसभा का बहिष्कार कर गई। यह अधिनियम एक तरह से देश में यहूदीकरण को विधिक जामा पहनाता है। यहां बहस यहूदीवाद को लेकर नहीं है। इजरायल ने स्वयं को वैचारिक आधार पर यहूदी राष्ट्र बनाया जबकि इसके उलट भारत ने गैर वैचारिक धर्मनिरपेक्ष संविधान बनाया। अब इसे चुनौती दी जा रही है और कांग्रेस बहिष्कार के अलावा कुछ नहीं कर पा रही। असम समेत देश भर के हिंदू और मुस्लिम यह सब देख रहे हैं।

यह भाजपा को रास आता है। पार्टी का जनाधार भी यही चाहता है। पार्टी जब अवैध प्रवासियों को दीमक कहती है तो उसके समर्थक प्रसन्न होते हैं। अगर पार्टी संविधान में संशोधन करके यह स्पष्ट कर देती है कि इनमें भी केवल मुस्लिम ही दीमक हैं तो उनके जोश का ठिकाना नहीं रहेगा। कांग्रेस को यह भी नहीं पता कि उसका आधार क्या है या अगले कुछ महीनों में जब चुनाव प्रचार शुरू हो जाएगा तो वह अपना जनाधार कैसे बनाएगी?

विशुद्ध मोदी विरोध चाहे जितना क्रोध से भरा हो, वह कभी विचारधारा या चुनावी विकल्प नहीं बन सकता। वह ज्यादा से ज्यादा मोदी को इतना नुकसान पहुंचा सकता है कि लोकसभा में पार्टी की सीटें 200 से कम हो जाएं। परंतु क्या इससे आपकी सीटों की संख्या 100 का आंकड़ा पार कर जाएगी? भारत के मानचित्र को करीब से देखिए। राज्यवार तरीके से देखिए तो आप पाएंगे कि अगर मई तक लोगों का भाजपा से बुरी तरह मोहभंग हो जाए तो भी कांग्रेस ज्यादा राज्यों में प्रमुख विकल्प नहीं बन पाएगी। राहुल गांधी के लिए यही कड़वी हकीकत है।

सामान्य उपज से खास अलग नहीं हैं ऑर्गेनिक फूड

खेती-बाड़ी

सुरिंदर सूद

एक शोध रिपोर्ट में यह दावा किया गया है कि ऑर्गेनिक तरीके से खेती करने में अधिक उत्सर्जन होता है जिससे परंपरागत खेती की तुलना में जलवायु पर अधिक प्रभाव पड़ता है

क्या ऑर्गेनिक खेती से कई स्वास्थ्य एवं पर्यावरणीय लाभ होते हैं? शायद नहीं। उपलब्ध साक्ष्यों से यही संकेत मिलता है कि ऑर्गेनिक खाद्य उत्पाद कृषि के नियमित तरीकों से उपजी फसलों से बेहतर नहीं हैं। अध्ययनों से अब यह भी पता चला है कि ऑर्गेनिक फूड पर्यावरण के लिए भी खास अच्छे नहीं हैं। प्रतिष्ठित जर्नल 'नेचर' के नवीनतम संस्करण में प्रकाशित एक शोध रिपोर्ट में यह दावा किया गया है कि ऑर्गेनिक तरीके से खेती करने में अधिक उत्सर्जन होता है जिससे परंपरागत खेती की तुलना में जलवायु पर अधिक प्रभाव पड़ता है। ऑर्गेनिक मांस एवं दुग्ध उत्पाद तो सामान्य तरीके से तैयार उत्पादों की तुलना में जलवायु पर अधिक नकारात्मक प्रभाव डालते हैं।

नेचर में प्रकाशित यह लेख जलवायु परिवर्तन को कम करने के लिए भूमि उपयोग में बदलाव की सक्षमता का आकलन करता है। यह लेख स्वीडन की चामर्स यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्नॉलजी द्वारा किए गए एक अध्ययन पर आधारित है जिसमें वर्ष 2013 से लेकर 2015 तक के फसल उपज संबंधी आंकड़ों का विश्लेषण किया गया है। इस अध्ययन में कहा गया है कि ऑर्गेनिक खेती के लिए अधिक जमीन की जरूरत होने से इसका पर्यावरणीय प्रभाव सामान्य खेती की तुलना में अधिक प्रतिकूल होता है। निस्संदेह, ऑर्गेनिक खेती के दौरान होने वाला प्रत्यक्ष कार्बन उत्सर्जन परंपरागत खेती से आम तौर पर कम होता है लेकिन कुल जलवायु प्रभाव कहीं अधिक होता है। शोधकर्ताओं के मुताबिक, इसकी वजह यह है कि ऑर्गेनिक खेती में अधिक जमीन की जरूरत पड़ती है जो अप्रत्यक्ष रूप से वनों को अधिक नुकसान पहुंचाता है। उन्होंने अपने अध्ययन में यह पाया है कि ऑर्गेनिक तरीके से मटर उपजाने में जलवायु को सामान्य तरीके की तुलना में 50 फीसदी अधिक नुकसान उठाना पड़ता है। गेहूं के मामले में तो यह अंतर 70 फीसदी तक होता है।

इसके अलावा ऑर्गेनिक उत्पादों का पोषण बेहतर होने के दावों पर सवाल उठाने वाले नए वैज्ञानिक साक्ष्य भी सामने आ रहे हैं। इस तरह का शुरुआती भरोसेमंद संकेत वर्ष 2009 में किए गए एक व्यापक विश्लेषण से मिला था। उससे पता चला था कि ऑर्गेनिक एवं दूसरे खाद्य उत्पादों के पोषण स्तर में कोई अंतर नहीं होता है। बाद में किए गए अध्ययनों ने इस निष्कर्ष पर मुहर लगाने का काम किया। वर्ष 2012 में इस विषय पर प्रकाशित 240 शोध रिपोर्टों के व्यापक अध्ययन से भी इसकी पुष्टि हुई। इसके मुताबिक ऑर्गेनिक एवं गैर-ऑर्गेनिक उत्पादों में विटामिन, प्रोटीन और वसा संबंधी कारकों में शायद ही कोई फर्क होता है। हालांकि कुछ उत्पादों में फॉस्फोरस की आंशिक रूप से अधिक मात्रा पाई गई और ऑर्गेनिक दूध में ओमेगा-3 फैटी एसिड का स्तर ऊंचा पाया गया।

स्वाद के लिहाज से भी ऑर्गेनिक एवं गैर-ऑर्गेनिक फूड में कोई खास फर्क नहीं होता है। अमेरिकी कृषि विभाग के मुताबिक दोनों तरह से उपजे खाद्य उत्पादों के स्वाद में अंतर कुछ लोग ही बता पाते हैं। अमेरिकी सरकार के मुताबिक, 'स्वाद एक व्यक्तिपरक एवं व्यक्तिगत सोच का मामला होता है।'

ऑर्गेनिक खेती के गुण-दोष को परे रख दें तो पादप वैज्ञानिकों की सामान्य धारणा यही है कि पूरी तरह से रसायन-मुक्त खेती कर पाना अब मुमकिन नहीं रह गया है। भारत समेत कई देशों में हरित क्रांति के अग्रदूत रहे और नोबेल पुरस्कार से सम्मानित महान कृषि विज्ञानी नॉर्मन ई बोरलॉग अक्सर यह कहा करते थे कि भूख की समस्या केवल ऑर्गेनिक खेती से हल नहीं की जा सकती है। अगर जरूरत का समूचा खाद्य पदार्थ ऑर्गेनिक तरीके से ही पैदा होना है तो इसके लिए न केवल अधिक जमीन की जरूरत होगी बल्कि ऑर्गेनिक खाद की भी बड़े पैमाने पर जरूरत पड़ेगी। लेकिन खेती योग्य जमीन सीमित है और ऑर्गेनिक खाद की भी एक सीमा से अधिक व्यवस्था कर पाना मुमकिन नहीं होगा। बोरलॉग अक्सर यह कहते थे, 'पौधों की जड़ें ऑयनी स्वरूप में पोषक तत्त्वों का अवशोषण करती हैं। उनके लिए यह मायने नहीं रखता है कि ये पोषक तत्त्व ऑर्गेनिक स्रोत से आ रहे हैं या गैर-ऑर्गेनिक स्रोत से।'

गैर-ऑर्गेनिक खेती के साथ बुनियादी समस्या खाद और जहरीले कीटनाशकों का बिना सोचे-समझे किया जाने वाला इस्तेमाल है। सुझाई गई सावधानियों को दरकिनार करते हुए खादों और कीटनाशकों का धड़ल्ले से इस्तेमाल किया जाता है। अगर किसी तरह से इस बेजा इस्तेमाल पर रोक लगाई जा सके तो आधुनिक खेती को लेकर जताई जाने वाली तमाम आपत्तियों को दूर किया जा सकता है।

हालांकि इस पूरी दलील का मकसद ऑर्गेनिक खेती को कमतर बताना नहीं है। इसमें कई सकारात्मक पहलू हैं। खासकर मिट्टी के जैविक एवं सूक्ष्म-पोषक गुणों को संरक्षित करने में ऑर्गेनिक खेती अधिक मुफीद है। इस लेख का असली मकसद ऑर्गेनिक खेती के बारे में बनी गलत धारणाओं को दूर करना भर है। जो लोग ऑर्गेनिक उत्पादों के लिए ऊंची कीमत दे सकते हैं और वह कीमत देने को तैयार हैं तो वे ऐसा करना जारी रख सकते हैं। ऑर्गेनिक खेती को भी इस बाजार पर पकड़ बनाने के लिए अपना विस्तार करने की जरूरत है। लेकिन रासायनिक पदार्थों के इस्तेमाल वाली परंपरागत खेती तेजी से विलुप्त होती जा रही खेती-योग्य जमीन और कृषि उपजों की बढ़ती मांग को देखते हुए अपरिहार्य है।

कानाफूसी

सांगठनिक बदलाव

राहुल गांधी को कांग्रेस का राष्ट्रीय अध्यक्ष बने अब वक्त हो चला है और अब पार्टी के कामकाज पर उनका प्रभाव भी साफ नजर आ रहा है। परंतु पर्यवेक्षकों का कहना है कि उनके कामकाज में किसी खास ढर्रे या शैली का अभाव देखने को मिल रहा है। उदाहरण के लिए देखें तो दिल्ली में पार्टी ने 80 वर्ष की उम्रदराज नेता शीला दीक्षित प्रदेश इकाई का नया अध्यक्ष बना दिया है। यह कदम पिछले प्रदेश अध्यक्ष अजय माकन का इस्तीफा स्वीकार किए जाने के बाद उठाया गया। उधर हिमाचल प्रदेश में 80 वर्षीय पूर्व मुख्यमंत्री वीरभद्र सिंह द्वारा नामित प्रदेश इकाई के अध्यक्ष सुखविंदर सिंह सुक्खू को प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष के पद से हटा दिया गया है। उनकी जगह कुलदीप सिंह राठौर को यह महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी सौंपी गई है। राठौर को राज्यसभा के उपनेता आनंद शर्मा के करीब माना जाता है। राठौर को वीरभद्र सिंह का विरोधी माना जाता है लेकिन उन्होंने कभी भी सिंह की सार्वजनिक तौर पर आलोचना नहीं की है। माना जा रहा है कि पार्टी संगठन में आने वाले दिनों में और कई बदलाव देखने को मिल सकते हैं।

आपका पक्ष

मानव तस्करी रोकने की जरूरत

एक दिन अचानक किसी परिवार के बच्चे का गायब हो जाना जिसमें विशेषकर लड़की हो, कितना दुखद होता है। ऐसी घटनाओं के बारे में सोच कर ही मन व्याकुलता से भर उठता है। आधुनिकता के इस दौर में मानव तस्करी की जड़ें गहरी होती जा रही हैं। पाकिस्तान, भारत, अफगानिस्तान, नेपाल, श्रीलंका, बांग्लादेश सहित तमाम एशियाई देशों से लड़कियों व बच्चों की तस्करी कर पश्चिमी और दक्षिणी यूरोप के कई हिस्सों में खरीद फरोख्त की जा रही है। जांच एजेंसियों, सुरक्षा, कानून व मानव तस्करी रोधी संस्थाओं की लाख कोशिशों के बावजूद मानव तस्करी पर नकेल कसना मुश्किल साबित होता जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत सहित दर्जनों एशियाई देशों से बच्चों की तस्करी कर यूरोप के कई हिस्सों में जिस्मफरोशी के काले कारोबार में धकेले जाने का पता चला है। दुनिया भर में नशीली दवाओं और अपराध

मानव तस्करी रोकने के लिए केंद्र और राज्य सरकार ने इससे संबंधित कड़े नियम बनाए हैं

की निगरानी करने वाली संयुक्त राष्ट्र की संस्था यूएनएन ऑफिस ऑन ड्रग्स ऐंड क्राइम (यूएनओडीसी) की ग्लोबल रिपोर्ट ऑन ट्रैफिकिंग इन पर्सन-2018 के मुताबिक 142 देशों से जुटाई गई रिपोर्ट में मानव तस्करी के तौर तरीकों की पड़ताल की गई है। इस रिपोर्ट में बताया गया है कि पीड़ितों के साथ हो रहे यौन शोषण के साथ ही मानव तस्करी अब भयानक रूप ले चुका है। तस्करी के शिकार लोगों में तीस फीसदी बच्चे शामिल हैं, इनमें लड़कियों की संख्या सबसे अधिक है। कमोबेश सभी देशों ने अपनी सीमाओं के भीतर तस्करी रोकने के लिए कड़े कानून बनाए हैं। कई संस्थाएं और सुरक्षा व जांच एजेंसियां भी मानव तस्करी पर निगाह रखती हैं। फिर भी मानव तस्करी पर रोक लगाने और आंकड़ों में कमी आने के बजाय उक्त रिपोर्ट तस्करी के भयावह रूप का खुलासा करती है। लिहाजा, पीड़ित देशों की सरकार, मानव तस्करी रोधी संस्थाओं और सुरक्षा जांच एजेंसियों की अपनी-अपनी परंपरागत कार्यप्रणाली से इतिश्री करना होगा। नई तकनीक और साधन संपन्न देशों की मदद से मानव तस्करी पर शिकंजा कसने की जरूरत ही समय की मांग है जिससे कि मानव तस्करी के कारोबार की जड़ें खोदी जा सके। साथ ही भविष्य में कोई भी परिवार अपने बच्चों को खो न सके और उनकी सुरक्षा की उम्मीदें बनी रहे।

पवन कुमार मौर्य, नई दिल्ली

जब दो धुर विरोधी एक हो आएं

उत्तर प्रदेश की दो बड़ी पार्टी समाजवादी पार्टी (सपा) और बहुजन समाज पार्टी (बसपा) ने आगामी लोकसभा चुनाव को देखते हुए गठबंधन कर लिया है। एक वक्त ऐसा था जब प्रदेश में सपा की सरकार थी और बसपा आए दिन आलोचना करती रहती थी। आज दोनों धुर विरोधी दलों ने सभी मतभेदों को भुला कर गठबंधन की घोषणा कर दी है। दोनों पार्टियों ने 80 संसदीय सीटों में से 38-38 सीटों पर चुनाव लड़ने की घोषणा की है। हालांकि कुल 80 सीटों में दोनों का आंकड़ा 76 ही हो रहा है और चार सीटें छोड़ी गई हैं। पिछले लोकसभा चुनाव में भाजपा ने प्रदेश से काफी सीटें जीती थीं। यह गठबंधन भाजपा को पराजित करने के मकसद से किया गया है। राजनीति में कब दुश्मन दोस्त बन जाए यह कहा नहीं जा सकता और इसका ताजा उदाहरण सपा-बसपा गठबंधन है।

किशोर कुमार, नोएडा

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।